प्रबंधन समिति एवं अन्य

बनाम

कुलपति एवं अन्य

(2008 की सिविल अपील संख्या 7319)

16 दिसम्बर, 2008

[ऐसे. बी. सिन्हा और सिरियाक जोसेफ, जे. जे.]

उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 धारा 68, 35 (2) कुलाधिपति को निर्देश-हटाने के संबंध में प्रस्ताव-कुलपति द्वारा गैर-अनुमोदन, तब से हटाने का निर्णय धारा 35 (2) के अनुसार नहीं- धारा 68- लिखित याचिका वैकल्पिक उपचार के अस्तित्व के आधार पर खारिज करना-अपील में तय किया गयाः विश्वविद्यालय कुलपति को व्यापक शक्तियां प्रदत्त की गई है, किन्तु वह किसी कानून की वैधता पर विचार नहीं कर सकता-न्यायिक समीक्षा की शक्ति केवल उच्च न्यायालयों में प्रदान की गई है-उच्च न्यायालय को वैकल्पिक उपचार की उपलब्धता के आधार पर अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार नहीं करना चाहिए- यह इस तथ्य के बावजूद अपने रिट अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर सकता है कि वैकल्पिक

उपचार उपलब्ध है, जहां वह प्रभावी नहीं होगा - इस प्रकार, उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया गया।

प्रत्यर्थी संख्या 3 अपीलार्थियों द्वारा संचालित महाविद्यालय का प्राचार्य है। उसके खिलाफ दुर्व्यवहार के आरोप थे। अनुशासनात्मक जाँच की गई और वह निलंबन के तहत रखा गया। उत्तरदाता नं. 1- विश्वविद्यालय के कुलपति को सूचित किया गया। उत्तरदाता नं. 3 आरोप पत्र जारी किया गया था लेकिन उन्होंने कोई जवाब पेश नहीं किया। जाँच समिति ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की कि प्रत्यर्थी सं० 3 प्रथम दृष्टया दुराचार के विभिन्न कृत्यों को करने का दोषी था। इसके बाद प्रतिवादी नं. 1 नोटिस जारी किया गया था। उन्हें गवाह से जिरह करने का नया अवसर दिया गया था। प्रत्यर्थी संख्या 1-कुलपति ने निलंबन आदेश पर रोक लगा दी। इसके बाद प्रत्यर्थी संख्या तीन को सेवा से हटाने का प्रस्ताव पारित किया गया। प्रत्यर्थी सं० एक ने प्रबंधन समिति के प्रस्ताव, प्रत्यर्थी संख्या तीन को सेवा से हटाने को मंजूरी नहीं दी, क्योंकि यह धारा 35(2) के प्रावधानों के अनुसार नहीं था। अतः धारा 35 (2) यूपी विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 निरस्त किए जाने योग्य था। प्रत्यर्थी सं० 1 ने यह भी निर्देश दिया कि प्रत्यर्थीनं 3 कानून के अनुसार सेवानिवृत्त होना चाहिए, क्योंकि वह सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुका है। याचिकाकर्ता ने रिट याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी के लिए उपलब्ध वैकल्पिक उपचार के आधार पर इसे खारिज कर दिया गया। इसलिए वर्तमान अपील पेश हुई।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया

1.1 विश्वविद्यालय के कुलाधिपति को व्यापक अधिकार प्रदान किए गए हैं। शक्ति कितनी भी व्यापक हो सकती है, यू. पी. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 के प्रावधानों के संदर्भ में, क़ानून का एक अंश होने के नाते स्वयं कुलाधिपति इसकी वैधता पर विचार नहीं कर सकता है। एक कानून की संवैधानिकता, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि न्यायिक समीक्षा की शक्ति भारत के संविधान द्वारा केवल देश के उच्च न्यायालयों में प्रदान की गई है किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा यह निर्धारित नहीं किया जा सकता है, चाहे वह कितना भी उच्च हो। उक्त प्रावधान के संदर्भ में विश्वविद्यालय के कुलाधिपति के किसी प्राधिकारी या अधिकारी के निर्णय से संबंधित मामले पर विचार कर सकते है कि क्या यह अधिनियम या कानून या उसके तहत बनाए गए अध्यादेश के अनुरूप है। प्रथम दृष्टया, कुलाधिपति से कानून के एक जटिल प्रश्न पर विचार करने की अपेक्षा नहीं की जाती है जिसमें किसी प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र के तथ्य के साथ क़ानून की व्याख्या शामिल है। यदि कुलाधिपति को केवल मामले के तथ्यात्मक पहलू पर ही गौर करना होता तो मामला अलग हो सकता था। [पैरा 16 और 17] [784-ई-एच; 785-ए]

प्रबंधन समिति, अटारा स्नातकोत्तर महाविद्यालय बनाम कुलपति, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी और अन्य **(1990) सप्लीमेंन्ट्री एससीसी 773, संदर्भित।**

1.2. यह किसी भी संदेह या विवाद से परे है कि एक वैकल्पिक उपचार की उपलब्धता अपने आप में उच्च न्यायालय के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इंकार करने का आधार नहीं हो सकती है। इस तथ्य के बावजूद कि वह अपने रिट अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर सकता है। अन्य बातों के साथ-साथ ऐसे मामले में वैकल्पिक उपाय भी उपलब्ध है, जहां वह प्रभावोत्पादक नहीं होगा। इसके अलावा, जब कोई आदेश किसी प्राधिकारी द्वारा अधिकारिता के बिना या प्राकृतिक नियमों के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया हो तो उच्च न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार नहीं करेंगे, हालांकि विकल्प उपचार मौजूद है। [पैरा 20 और 21] [786-ए-सी]

1.3 इस प्रकृति के मामले में ऐसी शक्ति का उचित रूप से प्रयोग किया गया है या नहीं, एक जटिल प्रश्न है। जिसका निर्धारण आमतौर पर उच्च न्यायालय द्वारा ही किया जाना चाहिए। मामले में उत्पन्न होने वाले कानूनी प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए, यह एक उपयुक्त मामला नहीं था, जिसमें उच्च न्यायालय को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर देना चाहिए था। इस प्रकार आक्षेपित आदेश को कायम नहीं रखा जा

सकता और इसे रदद किया जाता है। [पैरा 24, 25 और 26] [789-ई; 790-डी-ई]

व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम पंजीयक ट्रेड मार्क्स मुंबई और अन्य **(1998) 8 एससीसी** 1; गुरुवयर देवस्वम प्रबंध समिति और अन्य। वी. सी. के. राजन और अन्य **(2003) 7 एससीसी 546;** मानवेंद्र मिश्रा (डॉ.) बनाम गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर और अन्य **(2000) 1 यूपीएलबीईसी** 702; फ्रैंक एंथनी पब्लिक स्कूल कर्मचारी संघ बनाम भारत संघ और अन्य **(1986) 4 एससीसी** 707; श्रीमती वाई. थेक्लाम्मा बनाम भारत संघ और अन्य **(1987) 2 एससीसी 516;** क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज अस्पताल कर्मचारी संघ और अन्य। क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज वेल्लोर एसोसिएशन और अन्य। आदि **(1987) 4 एससीसी 691;** यूनुस अली एफशा बनाम मोहम्मद अब्दुल कलाम और अन्य **(1999) 3 एससीसी 676;** प्रबंधन समिति, सेंट जॉन इंटर कॉलेज बनाम गिरधारी सिंह और अन्य **(2001) 4 एससीसी 296** और सचिव, मलंकारा सीरियन कैथोलिक कॉलेज बनाम टी. जोस और अन्य, **(2007) 1 एससीसी 386** और पी.ए. इनामदार और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य **(2005) 6 एससीसी 537,** संदर्भित किया गया।

मामला कानून संदर्भ

(1990) सप्ली. एससीसी 773, उल्लेख किया गया है, पैरा 18।

(1998) 8 एससीसी 1, उल्लेख किया गया है, पैरा 21।

(2003) 7 एससीसी 546, उल्लेख किया गया है, पैरा 21।

(2000) 1 यूपीएलबीईसी 702, उल्लेख किया गया है, पैरा 22।

(1986) 4 एससीसी 707, उल्लेख किया गया है, पैरा 23।

(1987) 2 एससीसी 516, उल्लेख किया गया है, पैरा 23।

(1987) 4 एससीसी 691, उल्लेख किया गया है, पैरा 23।

(1999) 3 एससीसी 676, उल्लेख किया गया है, पैरा 23।

(2001) 4 एससीसी 296, उल्लेख किया गया है, पैरा 23।

(2007) 1 एससीसी 386, उल्लेख किया गया है, पैरा 23।

(2005) 6 एससीसी 537, उल्लेख किया गया है, पैरा 24।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारः सिविल अपील सं 7319/2008

इलाहाबाद उच्च न्यायालय लखनऊ पीठ लखनऊ की रिट याचिका संख्या 1119/2006 (ऐस/बी) में अंतिम आदेश निर्णय दिनांकित 21.8.2006 से।

अनूप जी. चौधरी, जून चौधरी, शकील अहमद सैयद, मोहम्मद मोनिस अब्बासी और प्रभात कुमार राय अपीलार्थी के लिए।

आर. जी. पाडिया, सी. डी. सिंह, सनी चौधरी, वैराग्य वर्धन दुबे, आदित्य सिंह, उपासना नाथ, अनीश दयाल, अनीता शेनो, बी. बी. सिंह, सिद्धार्थ वैद और संजय पांडे प्रत्यर्थीगण के लिए।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

एस. बी. सिन्हा, जे.

1. अनुमति दी गई।

2. अपीलार्थी एक मुस्लिम अल्पसंख्यक स्नातकोत्तर कॉलेज चलाते हैं, जिसे आमतौर पर मुमताज पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज (संक्षेप में, 'कॉलेज') के रूप में जाना जाता है। यह लखनऊ विश्वविद्यालय (संक्षेप में, 'विश्वविद्यालय') के साथ अनुमोदित है तीसरा उत्तरदाता अर्थात डॉ. मुख्तार नबी खान को महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में नियुक्त किया गया था इस आरोप पर कि कथित प्रतिवादी के खिलाफ कदाचार के विभिन्न कृत्यों को करने का प्रथम दृष्टया मामला बनाया गया था, 2 मई 2003 को आयोजित एक बैठक में प्रबंधन समिति द्वारा अपनाये गये एक प्रस्ताव के अनुसार प्रारंभिक जांच की गई। उक्त उद्देश्य के लिए तीन वरिष्ठ सदस्यों की एक समिति गठित की गई। उक्त समिति ने लगभग 30 मई 2003 अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

3. अपीलार्थी, उक्त रिपोर्ट पर विचार करने पर 5 जून 2003 को आयोजित बैठक में एक प्रस्ताव पारित कर उचित अनुशासनात्मक जांच

कराने का निर्णय लिया गया। उन्हें निलंबित कर दिया गया। विश्विवद्यालय के कुलपति को भी इसकी विधिवत सूचना दे दी गई थी।

4. प्रत्यर्थी नं. 3 के खिलाफ आठ आरोपों वाला आरोप पत्र जारी किया गया था। हालाँकि, उन्होंने इसका कोई कारण/जवाब दाखिल नहीं किया।

5. कुछ गवाहों के साक्ष्य दर्ज करने के बाद जांच समिति ने 3 मार्च 2004 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। जिसमें यह मत व्यक्त करते हुए कि प्रत्यर्थी सं.3 प्रथम दृष्टया घोर दुराचार, कर्तव्य में लापरवाही, स्वयं को गलत तरीके से लाभ पहुँचाना और संस्था को गलत तरीके से नुकसान पहुंचाना का दोषी था। जाँच समिति की रिपोर्ट का प्रासंगिक हिस्सा उद्धृत किया गया है।

> " जाँच के उपरोक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए समिति अभियुक्त कर्मचारी को कदाचार, कर्तव्य में लापरवाही, अपने लिए गलत लाभ प्राप्त करने के दुर्भावनापूर्ण इरादे से काम करने और कॉलेज को गलत तरीके से नुकसान पहुँचाने का दोषी कहा जा सकता है और उसके अनुचित आचरण के परिणामस्वरूप कॉलेज की सद्भावना और प्रतिष्ठा को बहुत नुकसान हुआ है और इस प्रकार उनके द्वारा कॉलेज का लगातार कुप्रबंधन किया जा रहा था।"

6. 17 मई 2004 को या उसके आसपास, उक्त जांच रिपोर्ट की एक प्रति प्रतिवादी सं० 3 को भेजी गई थी। उन्हें यह भी बताया गया कि 01 जून 2004 को प्रबंधन समिति की बैठक होगी जिसमें उक्त रिपोर्ट पर विचार किया जायेगा।उक्त नोटिस के अनुसरण में प्रतिवादी संख्या 3, उक्त तिथि को प्रबंधन समिति के समक्ष उपस्थित हुआ। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से सुने जाने के अवसर का लाभ उठाया। उन्होंने अपनी लिखित दलीलें भी दाखिल कीं।

7. 05 जून 2004 को आयोजित एक बैठक में अपीलकर्ता-संस्था की प्रबंधन समिति द्वारा अपनाए गए एक प्रस्ताव द्वारा, प्रतिवादी नंबर 3 को दूसरा कारण बताओ नोटिस जारी करने का निर्णय लिया गया, जिसके अनुसार उसे 15 तारीख को नोटिस जारी किया गया था। 23 जून 2004 को अपना जबाब प्रस्तुत करते हुए तर्क दिया कि उन्हें गवाहों से जिरह करने का अवसर नहीं मिला। इसलिए, उसे एक नया अवसर दिया गया। जांच अधिकारी भी बदल दिया गया। इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ खंडपीठ के एक वरिष्ठ अधिवक्ता को जांच अधिकारी नियुक्त किया गया। हालाँकि, प्रतिवादी नंबर 3 ने उनके खिलाफ पक्षपात के आरोप लगाए, जिसके बाद एक अन्य जांच अधिकारी, यानी, आफताब अहमद सिद्दीकी, एडवोकेट को नियुक्त किया गया। उक्त जांच अधिकारी ने 20 नवंबर 2005 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

8. प्रतिवादी नंबर 1 ने, हालांकि, 31 दिसंबर 2005 को निलंबन के आदेश के संचालन पर रोक लगाने का आदेश पारित किया। 04 फरवरी 2006 को प्रबंधन समिति ने प्रतिवादी संख्या 3 को व्यक्तिगत रूप से सुनने के बाद एक प्रस्ताव पारित किया कि उसे सेवा से हटा दिया जाए। इसके बारे में एक रिपोर्ट, जैसा कि यूपी विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 (संक्षेप में, 'अधिनियम') की धारा 35 की उप-धारा (2) से जुड़े प्रावधान के तहत परिकल्पित है, प्रथम प्रतिवादी को भेजा गया था। दिनांक 07/12 जुलाई 2006 के एक आदेश के कारण, कुलपति ने प्रतिवादी संख्या 3 को हटाने के संबंध में प्रबंधन समिति के प्रस्ताव को यह कहते हुए मंजूरी देने से इनकार कर दिया:

> "कॉलेज की प्रबंधन समिति के निर्णय और संबंधित अभिलेखों/कागजातों से यह स्पष्ट है कि डॉ. एमएन खान, प्राचार्य मुमताज पोस्ट ग्रेजुएट डिग्री कॉलेज, लखनऊ को सेवा से हटाया जाना शासी/प्रबंध निकाय द्वारा स्थापित प्रक्रियाओं के अनुरूप नहीं है। कॉलेज के प्रबंधन निकाय की सेवा से हटाने का उक्त निर्णय लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रथम परिनियम के 35(2) के प्रावधानों के अनुसार नहीं है और इसलिए इसे रद्द किया जा सकता है।

अतः इस संदर्भ में उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम 1973 की धारा 35(2) के अंतर्गत कुलपति को प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रबंधन समिति, महाविद्यालय को निर्देशित किया जाता है कि डॉ. एमएन खान को सभी लाभों के साथ प्राचार्य के रूप में कार्य करने की अनुमति दी जाए क्योंकि सेवा से हटाने का प्रबंधन संस्था का निर्णय एकपक्षीय असंतोषजनक एवं विधि सम्मत नहीं है।

संदर्भित मामले में, चूँकि उनके प्रतिवेदन दिनांक 24.4.2006 के अनुसार डॉ. एमएन खान प्रिंसिपल ने दिनांक 3.1.2006 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुके हैं, कॉलेज की प्रबंधन समिति को डॉ. एमएन खान की सेवानिवृत्ति के लिए विचार करने और कदम उठाने का निर्देश नियमों के अनुसार दिया जाता है।''

9. उक्त आदेश की वैधता और/या वैधता को चुनौती देते हुए, अपीलकर्ताओं ने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की, जिसे विवादित आदेश के आधार पर यह कहते हुए खारिज कर दिया गया है:

"कुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 7/12.7.2006 के खिलाफ, याचिकाकर्ता के

पास यूपी राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की धारा 68 के तहत कुलाधिपति के समक्ष एक वैकल्पिक और प्रभावी उपाय है। रिकॉर्ड से पता चलता है कि विपरीत पक्ष नंबर 3, दिनांक 3.1.2006 को पहले ही सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुका है और शैक्षणिक सत्र 2005-06 भी दिनांक 30.6.2006 को समाप्त हो गया है।

इसलिए, हम याचिकाकर्ता के पास उपलब्ध वैकल्पिक उपाय के आधार पर तत्काल रिट याचिका को खारिज करते हैं। कुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, प्रत्यर्थी संख्या 3 को सेवा में बहाल करने के लिए आग्रह नहीं करेंगे क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 3 पहले ही दिनांक 3.1.2006 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुका है और शैक्षणिक सत्र 2005-06 भी दिनांक 30.6.2006 को समाप्त हो जायेगा।"

10. अपीलकर्ता इस प्रकार हमारे सामने हैं।

11. दिनांक 12 नवंबर 2007 के एक आदेश द्वारा, इस विवाद के मद्देनजर कि अपीलकर्ता अधिनियम की धारा 35 की उपधारा (2) की संवैधानिकता के साथ-साथ खंड के आलोक में विश्वविद्यालय क़ानून की प्रयोज्यता पर सवाल उठाना चाहते थे। 1) भारत के संविधान के अनुच्छेद

30 में, उन्हें अतिरिक्त आधार जुटाने की अनुमति दी गई थी, जिसके अनुसार अतिरिक्त आधार उठाए गए हैं।

12. अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री अनूप जी चौधरी आग्रह करेंगे:

i) अधिनियम की धारा 35 की उपधारा (2) और उसका प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 30 के अधिकारातीत खंड (1) है।

ii) उच्च न्यायालय, इस प्रकृति के एक मामले में, जहां अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों की वैधता और/या व्याख्या के साथ-साथ प्रथम प्रतिवादी के दिनांक 07/12 जुलाई 2006 के आदेश की वैधता की आवश्यकता है विचार किया गया और/या जिस तरीके से इसे पारित किया गया, यह माना जाना चाहिए कि वैकल्पिक उपचार के अस्तित्व के आधार पर रिट याचिका को खारिज करने में गंभीर त्रुटि हुई है।

iii) इस प्रकृति के मामले में, अधिनियम की धारा 68 को कुलाधिपति के हाथों में कोई प्रभावी उपाय प्रदान करने के लिए नहीं कहा जा सकता है और मामले को देखते हुए, लागू आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए।

13. दूसरी ओर प्रथम प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील डॉ. औरजी पाडिया तर्क देंगे:

(i) परिसीमा कानून के अधीन विश्वविद्यालय के कुलाधिपति द्वारा लिए गए निर्णय पर एक आदेश की समीक्षा के लिए प्रदान किए गए क़ानून को एक प्रभावी वैकल्पिक उपाय माना जाना चाहिए और मामले के उस दृष्टिकोण में, आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए;और

(ii) अधिनियम की धारा 35 की उप-धारा (2) में संलग्न परंतुक को ध्यान में रखते हुए, कुलपति को केवल एक नियामक शक्ति प्रदान की गई है और मुख्य प्रावधान के तहत पूर्व अनुमोदन देने की शक्ति नहीं दी गई है, कहा गया है कि क़ानून को भारत के संविधान के प्रावधानों के दायरे से बाहर नहीं कहा जा सकता क्योंकि ऐसे नियामक उपाय कानून में स्वीकार्य हैं।

14. यूपी राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 को यूपी राज्य में उच्च शिक्षा के शैक्षणिक और वित्तीय प्रशासन को मजबूत करने की दृष्टि से अधिनियमित किया गया था, यह सभी राज्य विश्वविद्यालयों (रुड़की विश्वविद्यालय और गोविंद बल्लभ पंत कृषि विश्वविद्यालय को छोड़कर) पर लागू एक व्यापक विधेयक है। भारत सरकार और राज्य सरकार द्वारा नियुक्त विभिन्न आयोगों और समितियों द्वारा की गई सिफारिशों और कुलपतियों और अन्य शिक्षाविदों के विचारों के आलोक में तैयार किया गया था।

15. अधिनियम में विभिन्न अधिकारियों को उनके संबंधित कार्यों को करने के लिए नामित किया गया है जो उन्हें अधिनियम या क़ानून के तहत दिए गए हैं। अधिनियम की धारा 35, अन्य बातों के साथ-साथ, विश्वविद्यालय से संबद्ध किसी संस्थान या कॉलेज में किसी कर्मचारी की सेवा की शर्तों को नियंत्रित करती है; इसकी उपधारा (2) इस प्रकार है:

> "35. सरकार या स्थानीय प्राधिकारी द्वारा बनाए रखी गई शर्तों के अलावा संबद्ध या संबद्ध महाविद्यालयों के शिक्षकों की सेवा की शर्तें।
>
> (1).....
>
> (2) किसी शिक्षक को बर्खास्त करने या हटाने या उसे रैंक में कम करने या उसे किसी अन्य तरीके से दंडित करने के ऐसे कॉलेज के प्रबंधन के प्रत्येक निर्णय को सूचित करने से पहले, कुलपति को सूचित किया जाएगा- कुलाधिपति और यह तब तक प्रभावी नहीं होगा जब तक कि इसे कुलपति द्वारा अनुमोदित न कर दिया गया हो:
>
> बशर्ते कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 30 के खंड (1) में निर्दिष्ट अल्पसंख्यक द्वारा स्थापित और प्रशासित कॉलेजों के मामले में, किसी भी शिक्षक को हटाने या रैंक में कमी करने या किसी अन्य तरीके से दंडित करने का प्रबंधन का

निर्णय नहीं होगा, कुलपति के अनुमोदन की आवश्यकता है, लेकिन, उन्हें सूचित किया जाएगा और जब तक वह संतुष्ट नहीं हो जाते कि इस संबंध में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया है, निर्णय को प्रभावी नहीं किया जाएगा।"

अधिनियम की धारा 68 इस प्रकार है:

"68. कुलाधिपति को संदर्भ.- यदि कोई प्रश्न उठता है कि क्या कोई व्यक्ति विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकरण या अन्य निकाय के सदस्य के रूप में विधिवत निर्वाचित या नियुक्त किया गया है, या होने का हकदार है, या क्या किसी प्राधिकरण या अधिकारी का कोई निर्णय विश्वविद्यालय का (किसी क़ानून, अध्यादेश या विनियम की वैधता के बारे में कोई भी प्रश्न, जो राज्य सरकार या कुलाधिपति द्वारा बनाया या अनुमोदित कोई क़ानून या अध्यादेश नहीं है) इस अधिनियम या क़ानून या बनाए गए अध्यादेश के अनुरूप है इसके तहत, मामला कुलाधिपति को भेजा जाएगा और उस पर कुलाधिपति का निर्णय अंतिम होगा:

बशर्ते कि इस धारा के तहत कोई संदर्भ नहीं दिया जाएगा-

(ए) उस तारीख के तीन महीने से अधिक समय बाद जब प्रश्न पहली बार उठाया जा सकता था;

(बी) विश्वविद्यालय के प्राधिकारी या अधिकारी या पीड़ित व्यक्ति के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा:

बशर्ते कि चांसलर असाधारण परिस्थितियों में-

(ए) पूर्ववर्ती परंतुक में उल्लिखित अवधि की समाप्ति के बाद स्वप्रेरणा से कार्य करेगा या उसके बाद किसी संदर्भ पर विचार करेगा;

(बी) जहां संदर्भित मामला चुनाव के बारे में विवाद से संबंधित है, और इस प्रकार चुने गए व्यक्ति की पात्रता संदेह में है, तो स्थगन के ऐसे आदेश पारित करें जो वह उचित और समीचीन समझे;

(सी) * * * * *"

क़ानून 17.06, जो हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है, नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"17.06.(1) क़ानून 17.04 के खंड (1) या खंड (2) में उल्लिखित किसी भी आधार पर किसी शिक्षक की सेवाओं को बर्खास्त करने, हटाने या समाप्त करने का कोई आदेश नहीं (नैतिक अधमता से जुड़े अपराध के लिए सजा के मामले को छोड़कर पद के उन्मूलन का) तब तक पारित किया जाएगा जब तक कि शिक्षक के खिलाफ आरोप तय

नहीं कर दिया गया हो और उसे उन आधारों के विवरण के साथ सूचित नहीं किया गया हो जिन पर कार्रवाई करने का प्रस्ताव है और उसे पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया है: -

(i) अपने बचाव में एक लिखित बयान प्रस्तुत करने का;

(ii) यदि वह चाहे तो उसे व्यक्तिगत रूप से सुना जा सकता है, और

(iii) अपने बचाव में ऐसे गवाह को बुलाना और उसकी जांच करना, जैसा वह चाहे;

बशर्ते कि प्रबंधन या उसके द्वारा जांच करने के लिए अधिकृत अधिकारी, लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले पर्याप्त कारणों के आधार पर, किसी भी गवाह को बुलाने से इनकार कर सकता है।

(2) प्रबंधन, जांच अधिकारी की रिपोर्ट की तारीख से दो महीने के भीतर किसी भी समय, संबंधित शिक्षक को सेवा से बर्खास्त करने या हटाने, या ऐसी बर्खास्तगी, निष्कासन या समाप्ति के आधारों का उल्लेख करते हुए उसकी सेवाओं को समाप्त करने का प्रस्ताव पारित कर सकता है।

(3) संकल्प तुरंत संबंधित शिक्षक को सूचित किया जाएगा और अनुमोदन के लिए कुलपति को भी सूचित किया

जाएगा और जब तक कुलपति द्वारा अनुमोदित न किया जाए तब तक यह प्रभावी नहीं होगा।

(4) प्रबंधन, शिक्षक को बर्खास्त करने, हटाने या समाप्त करने के बजाय, एक निर्दिष्ट अवधि के लिए शिक्षक के वेतन को कम करके या एक निर्दिष्ट अवधि के लिए उसके वेतन की वृद्धि को रोककर कम सजा देने का प्रस्ताव पारित कर सकता है। तीन वर्ष से अधिक नहीं और/या शिक्षक को उसके निलंबन की अवधि, यदि कोई हो, के दौरान उसके वेतन से वंचित किया जा सकता है। इस तरह की सजा देने वाले प्रबंधन के प्रस्ताव की सूचना कुलपति को दी जाएगी और यह केवल तभी प्रभावी होगा जब उसे किसी सीमा तक कुलपति द्वारा अनुमोदित कर दिया जावे।"

16. विश्वविद्यालय के चांसलर को व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। शक्ति कितनी भी व्यापक क्यों न हो, चांसलर, अधिनियम के प्रावधानों के संदर्भ में, स्वयं क़ानून का प्राणी होने के नाते, उसकी वैधता पर विचार नहीं कर सकता। किसी क़ानून की संवैधानिकता, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि न्यायिक समीक्षा की शक्ति भारत के संविधान द्वारा केवल देश के वरिष्ठ न्यायालयों को प्रदान की गई है, किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा

निर्धारित नहीं की जा सकती, चाहे वह कितना भी उच्च प्राधिकारी क्यों न हो।

17. कुलाधिपति, उक्त प्रावधान के संदर्भ में, विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी या अधिकारी के निर्णय से संबंधित मामले पर विचार कर सकते हैं कि क्या यह अधिनियम या क़ानून या उसके तहत बनाए गए अध्यादेश के अनुरूप है। प्रथम दृष्टया, चांसलर से किसी प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र संबंधी तथ्य की तुलना में क़ानून की व्याख्या से जुड़े कानून के जटिल प्रश्न पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। यदि कुलाधिपति को केवल मामले के तथ्यात्मक पहलू पर ही गौर करना होता तो मामला अलग हो सकता था। अपीलकर्ताओं ने अधिनियम और/या क़ानून की वैधता पर सवाल उठाने के अलावा, क़ानून के प्रावधानों को लागू करने में कुलपति की ओर से क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि का भी आरोप लगाया है।

18. डॉ. पाडिया ने प्रबंधन समिति, अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज बनाम कुलपति, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी एवं अन्य के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर गहरा भरोसा जताया। 1990 (अनुपूरक) एससीसी 773 यह तर्क देने के लिए कि चांसलर की शक्ति प्रकृति में व्यापक है।उस मामले में, विचार के लिए यह प्रश्न उठा कि क्या कुलपति ने मामले की परिस्थितियों की ठीक से सराहना की थी या क्या उनका निर्णय पूरी तरह से विकृत था और प्रबंधन समिति और कई गवाहों के साक्ष्यों की

अनदेखी में पारित किया गया था। बैठकों के संचालन के संबंध में उनके समक्ष जांच की गई। यह उपरोक्त स्थिति में था, इस न्यायालय ने देखा:

> "…. हमारी राय में यह इस न्यायालय का काम नहीं है कि वह तथ्यात्मक परिस्थितियों का मूल्यांकन करे और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कुलपति का आदेश सही है या नहीं, खासकर जब यह धारा 68 के तहत पीड़ित पक्ष के लिए खुला है। उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम में, विश्वविद्यालय के कुलाधिपति को संदर्भित किया जाना चाहिए, जिसके पास यह निर्णय लेने की पर्याप्त शक्तियाँ हैं कि किसी प्राधिकारी या अधिकारी द्वारा लिया गया कोई भी निर्णय विश्वविद्यालय के क़ानून और अध्यादेशों के अनुरूप है या नहीं। इस प्रावधान के मद्देनजर यह प्रबंधन समिति डॉ. गौड़ की सेवाओं की समाप्ति और कुलपति के आदेश की वैधता के संबंध में मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए कुलाधिपति को एक संदर्भ देने के लिए स्वतंत्र है।"

19. इसलिए, इस न्यायालय ने उसमें प्राप्त तथ्यात्मक मैट्रिक्स को ध्यान में रखते हुए, अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर दिया।

20. इस तथ्य के अलावा कि एक वैधानिक प्राधिकारी किसी क़ानून की वैधता पर विचार नहीं कर सकता है, जैसा कि श्री चौधरी ने हमारे सामने आग्रह किया है, यह किसी भी संदेह या विवाद से परे है कि वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता अपने आप में एक आधार नहीं हो सकती है उच्च न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इंकार करेगा। यह इस तथ्य के बावजूद अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है कि वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है, अन्य बातों के साथ-साथ, ऐसे मामले में जहां वह प्रभावोत्पादक नहीं होगा।

21. इसके अलावा, जब किसी प्राधिकारी द्वारा बिना अधिकार क्षेत्र के या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए कोई आदेश पारित किया गया है, तो वरिष्ठ न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार नहीं करेंगे, हालांकि एक वैकल्पिक उपाय मौजूद है। इस संदर्भ में, व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम ट्रेड मार्क्स रजिस्ट्रार, मुंबई और अन्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों का उल्लेख करना उचित होगा। (1998) 8 एससीसी 1:

> "15. लेकिन इस न्यायालय द्वारा वैकल्पिक उपाय को लगातार कम से कम तीन आकस्मिकताओं में बाधा के रूप में कार्य नहीं करने के लिए माना गया है, अर्थात्, जहां किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए रिट याचिका

दायर की गई है या जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ है या जहां आदेश या कार्यवाही पूरी तरह से क्षेत्राधिकार के बिना है या किसी अधिनियम की वैधता को चुनौती दी गई है।"

[गुरुवयूर देवास्वोम प्रबंध समिति और अन्य वी. सीके राजन और अन्य (2003) 7 एससीसी 546] भी देखे,

इस मामले में, हालांकि, हमारे सामने पहली बार, अधिनियम की धारा 16 में जोड़े गए परंतुक का प्रभाव, इसके अलावा हमारे द्वारा यहां पहले देखे गए अन्य बिंदुओं पर भी सवाल है।

22. डॉ. पाडिया ने मानवेंद्र मिश्रा (डॉ.) बनाम गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर और अन्य के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा किया। (2000) 1 यूपीएलबीईसी 702 जिसमें माननीय काटजू, जे. (जैसा कि उस समय उनका आधिपत्य था), ने उक्त न्यायालय की एक डिवीजन बेंच के लिए बोलते हुए कहा कि वैकल्पिक उपाय के अस्तित्व के आधार पर एक रिट आवेदन पर विचार करने से इनकार करना है। हालाँकि, यह पूरी तरह से विवेक का मामला है, निस्संदेह, विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जाना चाहिए। इस मामले में यह हुआ था :

"...चूंकि रिट क्षेत्राधिकार विवेकाधीन क्षेत्राधिकार है, इसलिए यदि कोई वैकल्पिक उपाय है तो याचिकाकर्ता को आम तौर पर उसके वैकल्पिक उपाय में स्थानांतरित कर दिया जाना चाहिए। यह अब विशेष रूप से आवश्यक है क्योंकि उच्च न्यायालय में भारी बकाया है और यह न्यायालय अब इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता है वैकल्पिक उपाय मौजूद होने पर भी रिट याचिकाओं पर विचार करने की विलासिता। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वैकल्पिक उपाय एक पूर्ण बाधा नहीं है, लेकिन यदि कोई वैकल्पिक उपाय मौजूद है तो आम तौर पर रिट याचिका पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।"

[जोर दिया गया]

23. इस प्रकार, इसमें भी कोई कानूनी सिद्धांत नहीं दिया गया है कि सभी स्थितियों में, उच्च न्यायालय केवल इस आधार पर अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इंकार कर देगा कि वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है। हम देख सकते हैं कि डॉ. पाडिया ने स्वयं, अपनी सामान्य निष्पक्षता में, हमारे ध्यान में कई निर्णय लाए हैं, जिन्होंने बर्खास्तगी, निष्कासन या निलंबन के आदेश के मामले में विश्वविद्यालय या संबद्ध निकायों की नियामक शक्ति की वैधता को बरकरार रखा है। एक कर्मचारी, अर्थात, फ्रैंक एंथोनी पब्लिक स्कूल कर्मचारी एसोसिएशन बनाम भारत संघ और अन्य।

(1986) 4 एससीसी 707; श्रीमती वाई. थेक्लम्मा बनाम भारत संघ एवं अन्य। (1987) 2 एससीसी 516 और क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज अस्पताल कर्मचारी संघ और अन्य आदि.बनाम क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज वेल्लोर एसोसिएशन और अन्य (1987) 4 एससीसी 691, एक ओर, और निर्णय यह मानते हुए कि यूनुस अली शा बनाम मोहम्मद अब्दुल कलाम और अन्य जैसे किसी विश्वविद्यालय, संस्थान और अल्पसंख्यक संस्थान को इतनी व्यापक शक्ति प्रदान नहीं की जा सकती है। (1999) 3 एससीसी 676 और प्रबंधन समिति, सेंट जॉन इंटर कॉलेज बनाम गिरधारी सिंह और अन्य। (2001) 4 एससीसी 296 हमारा ध्यान सचिव, मलंकारा सीरियन कैथोलिक कॉलेज बनाम टी. जोस और अन्य के मामले में इस न्यायालय के हालिया फैसले की ओर भी आकर्षित हुआ है।(2007) 1 एससीसी 386 जिसमें यह आयोजित किया गया था:

> "19. अल्पसंख्यकों द्वारा शैक्षणिक संस्थान की स्थापना और प्रशासन से संबंधित
>
> सामान्य सिद्धांतों को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:
>
> (1).....
>
> (ii).....

(iii) शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन का अधिकार पूर्ण नहीं है न ही इसमें कुप्रबंधन का अधिकार शामिल है। शैक्षिक चरित्र और मानकों को सुनिश्चित करने और अकादमिक उत्कृष्टता बनाए रखने के लिए नियामक उपाय हो सकते हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि प्रशासन कुशल और सुदृढ़ हो, ताकि संस्थान की शैक्षणिक आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके, प्रशासन पर जाँच की जा सकती है। आम तौर पर छात्रों और शिक्षकों के कल्याण के संबंध में राज्य द्वारा बनाए गए विनियम, नियुक्ति के लिए पात्रता मानदंड और योग्यता निर्धारित करने वाले विनियम, साथ ही कर्मचारियों की सेवा की शर्तें (शिक्षण और गैर-शिक्षण दोनों), कर्मचारियों के शोषण या उत्पीड़न को रोकने के लिए विनियम, और अध्ययन के पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या को निर्धारित करने वाले नियम इस श्रेणी में आते हैं। ऐसे नियम किसी भी तरह से अनुच्छेद 30(1) के तहत अधिकार में हस्तक्षेप नहीं करते हैं।

(iv).....

(v).....”

20. सहायता प्राप्त संस्थाएँ या तो धर्मनिरपेक्ष शिक्षा या व्यावसायिक शिक्षा की शिक्षा देती हैं। राज्य निधि से संचालित शिक्षण संस्थानों में धार्मिक शिक्षा वर्जित है। धर्मनिरपेक्ष शिक्षा या व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने वाले इन सहायता प्राप्त शैक्षणिक अल्पसंख्यक संस्थानों में आवश्यक रूप से गैर-अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों के साथ तुलनीय मानक होने चाहिए। ऐसे मानकों को केवल सुयोग्य पेशेवर शिक्षकों द्वारा ही प्राप्त और बनाए रखा जा सकता है। किसी संस्थान को अच्छे योग्य पेशेवर शिक्षकों की सेवाएँ तभी मिल सकती हैं, जब सेवा की शर्तें सुरक्षा, संतुष्टि और सभ्य जीवन स्तर सुनिश्चित करती हों। इसीलिए राज्य शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों के कर्मचारियों की सेवा शर्तों को विनियमित कर सकता है। नतीजतन, शैक्षणिक संस्थानों के कर्मचारियों की सेवा शर्तों को विनियमित करने का कोई भी कानून अल्पसंख्यक संस्थानों पर भी लागू होगा, बशर्ते कि ऐसा कानून कर्मचारियों पर प्रबंधन के समग्र प्रशासनिक नियंत्रण में हस्तक्षेप न करे।

21. हम राज्य से सहायता प्राप्त करने वाले अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों के कर्मचारियों के संबंध में राज्य द्वारा अनुमेय विनियमन की सीमा को भी दोहरा सकते हैं, जैसा कि टीएमए पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002) 8 एससीसी 481 में स्पष्ट और स्पष्ट किया गया है। राज्य निर्धारित कर सकता है:

(1).....

(ii) कर्मचारियों पर प्रबंधन द्वारा समग्र प्रशासनिक नियंत्रण में हस्तक्षेप किए बिना कर्मचारियों की सेवा शर्तें,

(iii).....

(iv)....

24. इस प्रकृति के मामले में ऐसी शक्ति का उचित रूप से प्रयोग किया गया है या नहीं, हमारी राय में, एक जटिल प्रश्न होने के कारण आमतौर पर उच्च न्यायालय को ही इसका निर्धारण करना चाहिए। हमारा ध्यान पीए इनामदार और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2005) 6 एससीसी 537 के मामले में इस अदालत की सात-न्यायाधीशों की पीठ के एक फैसले की ओर भी आकर्षित किया गया है। जिसमें यह तय किया गया है:

> "126. हमारे अनुसार, टीएमए पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002) 8 एससीसी 481 में बहुमत की राय के पैरा 68 में टिप्पणियाँ, जिस पर पार्टियों के विद्वान वकील अपने सबमिशन में बहुत भिन्न रहे हैं, मुख्य निर्णय के अन्य भागों को असंयुक्त होकर नहीं पढा जाना चाहिए। पाई फाउंडेशन में निर्णय के कुछ पैराग्राफों में शामिल कुछ टिप्पणियों को अगर अलग से पढ़ा जाए तो वे एक-दूसरे के

साथ विरोधाभासी या असंगत प्रतीत होते हैं लेकिन यदि की गई टिप्पणियों और निकाले गए निष्कर्षों को कुल मिलाकर इस तरह पढ़ा जाता है कि फैसले में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि अल्पसंख्यकों और गैर-अल्पसंख्यकों के गैर-सहायता प्राप्त निजी शैक्षणिक संस्थानों को राज्य की सीट-बंटवारे और औरक्षण नीति के अधीन होने के लिए मजबूर किया जा सकता है। फैसले के प्रासंगिक हिस्सों को पढ़ना, जिस पर विद्वान वकील ने टिप्पणियां और प्रतिवाद किया है -टिप्पणियाँ और पूरे निर्णय को पढ़ना (इस न्यायालय के पिछले निर्णयों के आलोक में, जिन्हें पाई फाउंडेशन में अनुमोदित किया गया है) हमारी सुविचारित राय में, पैरा 68 में टिप्पणियाँ केवल गैर-सहायता प्राप्त निजी संस्थानों को राज्य के साथ सीट-बंटवारे के लिए स्वेच्छा से सहमत होकर या राज्य की सामान्य प्रवेश परीक्षा के आधार पर चयन को अपनाकर प्रवेश के मानदंड के रूप में योग्यता बनाए रखने की अनुमति देती हैं। ऐसी टिप्पणियाँ भी हैं जिनमें कहा गया है कि वे जरूरतमंद और गरीब छात्रों को मुफ्त और छात्रवृत्ति देने के लिए अपनी नीति बना सकते हैं या समाज के कमजोर और गरीब वर्गों की शैक्षिक

आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए राज्य की औरक्षण नीति के अनुरूप नीति अपना सकते हैं।"

25. मामले में उठने वाले कानूनी सवालों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय है कि यह एक उपयुक्त मामला नहीं था जहां उच्च न्यायालय को रिट आवेदन पर विचार करने के लिए अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर देना चाहिए था।

26. उपरोक्त कारणों से, विवादित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता और तदनुसार अपास्त किया जाता है। तदनुसार अपील स्वीकार की जाती है। उच्च न्यायालय से अनुरोध है कि वह इस मामले पर गुण-दोष के आधार पर विचार करे। खर्चे बाबत कोई आदेश नहीं होगा।

अपील स्वीकृत

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी आशुतोष गोसिन्हा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।